Journal
of the
Oriental Institute
M.S. University of Baroda
ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका में परिवर्तन

(डॉ. योगमाया उपाध्याय)

शासकीय गजानंद अग्रवाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय भाटापारा

19 वीं शताब्दी से ही महिलाओं की भूमिका और उनकी प्रस्थिति को सीमित करने वाली सामाजिक अश्रमताओं के विरोध में कानून बनने का आरंभ हुए। स्वतंत्रता के पश्चात् न्याय, स्वतंत्रता समानता को बढ़ावा देने की सवैधानिक प्रतिबद्धता हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् कई प्रकार के ऐसे कानून लागू किए गए जो सामाजिक जीवन से संबंधित संवैधानिक संस्थाओं के सिद्धांतो को लागू करने के प्रयास भी विवाह एवं विरासत से सम्बधित कानूनों में सुधार, श्रम कानूनों में मानवीय स्थितियों को सुधारने के कानून, प्रभाव से संबंधित लाभ एवं श्रमिकों के कल्याण हेतु बनाई गई योजनाएँ ऐसे कार्यक्रम थे जिनका उद्देश्य महिलाओं की निम्न स्थिति में योगदान देने वाली अश्रमताओं को समाप्त करना था।

नियोजित सामाजिक आर्थिक विकास के कार्यक्रमों और नीतियो ने महिलाओं को विकास की सामाजिक आर्थिक प्रक्रिया में अधिक जिम्मेंदारी पूर्वक सकारात्मक सहभागिता के लिए आर्थिक अवसर प्रदान किए । नियोजन के सिंद्धात को स्वीकार करने से यह स्पष्ट हुआ कि अगर विकास को तीव्र गति देनी हैं तो अर्थव्यवस्था जनसंख्या के आधे भाग के सक्षम योगदान को नकार नहीं सकती। इसीलिए महिलाओं के विकास की प्रक्रिया में शामिल करने के प्रयास किए गए।

1970 के दशक से नियोजन की प्रक्रिया में महिलाओं की हिस्सेदारी पर विशेष ध्यान देने के लिए दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। यू.एन.ओं. द्वारा 1975 को अंतराष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित करने एवं 1975 से 85 तक के दशक को महिला दशक घोषित करना महिलाओं से सम्बधित विषयों में एक महत्वपूर्ण कदम था। सारे विश्व का ध्यान महिलाओं की समस्याओं, आश्यकताओं, क्षमताओं की तरफ आकर्षित किया गया था हर वाद–विवादों एवं शोधों द्वारा समाज में महिलाओं की भूमिका का पुनः निरीक्षरी किया गया और यह माँग की गई कि ऐसे कार्यक्रम बनाए जाए जिसमें महिलाऐ अपनी क्षमता का उपयोग करके समाज में उचित योगदान दे सकें। कई विषयों में नए कार्यक्रम बनाए गए परंतु ये कार्यक्रम राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय सरकार एवं गैर सरकारी अभिकरकों के द्वारा विशेषताये स्वास्थाये, शिक्षा एवं रोजगार आदि पर केन्द्रित बिन्दु थे। दूसरा महत्वपूर्ण कारक विकासवादी सिद्धांत में महत्वपूर्ण परिवर्तन थे, जिसने विकास में महिलाओं की सहभागिता को केन्द्र बिंन्दु बनाया यह पाए जाने पर कि विकास की नियोजित प्रक्रिया के लाभ स्वयं ही शक्तिहीन एवं गरीब वर्गों तक नहीं पहुंचते इसलिए समाज के शोषित वर्गो को लाभ पहुंचाने के लिए विशेष प्रयास किए गए वृद्धि कि गति को बढ़ाने के प्रयासो के लाभ के साथ–साथ विशेष रूप से लक्षित कार्यक्रमों को सोचा गया और क्रियांन्वित किया गया महिलाओं को इस प्रकार का शोषित समूह माना जिस पर पूर्व ध्यान देने कि जरूरत भी शिक्षा शैक्षणिक व्यावसायिक प्रशिक्षण स्वास्थ्य सेवाओं परिवारो

नियोजन कल्याणकारी योजनाओं इत्यादि द्वारा महिलाओं कि मानसिक क्षमताओं को बढ़ावा एवं उनके जीवन कि परिस्थितियों को सुधारे जाने का प्रयास किए गए।

लेकिन महिलाओं कि विभिन्न श्रेणियों पर प्रत्येक क्षेत्र में किये गए विकासवादी प्रयासो का इच्छित एवं एक समान प्रभाव नहीं पड़ा हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारत में महिलाए एक समरूप श्रेणी नहीं बनाती है, महिलाओं के समूह एक दुसरे से न केवल शारीरिक एवं जनसख्यिकी विशेषताओं में अपितु धर्म जाति वर्ग क्षेत्र आदि कारको द्वारा प्रभावित व्यवहारो में भिन्न–भिन्न है केवल कुछ उच्च एवं मध्य जाति तथा वर्गो के कुछ भार्गों कि महिलाए इन कार्यक्रमों द्वारा लाभांन्वित हुई है बहुत बड़ी संख्या में भारतीय महिलाए अभी तक शोषण एवं भेद–भाव कि निति कि शिकार है एवं वंचित जीवन व्यतित कर रही हैं।

विकासवादी कार्यक्रमों कि गलत सीमित सोच एवं क्रियांन्वयन द्वारा उत्पन्न सीमिताएँ इच्छित दिशा ही प्रगति में समस्याएँ भी उत्पन्न करती है इन सीमाओं के अलावा कई और समस्याएँ भी उत्पन्न होती है क्योंकि संविधान द्वारा उद्देश्य कि सामाजिक स्वीकृति समय और के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है महिलाएँ घरेलू पत्नी एवं माँ मानी जाती है और यह महिलाओं कि स्थिति को भी प्रभावित करती हैं। शिक्षित एवं कुशल महिलाओं में भी घर को सवारने एवं बाहर भविष्य बनाने के समय संघर्ष होता है महिलाओं के दायरे बढ़ गए है परंतु जीवन में उनके लिए संभावनाओं और विकल्प अभी भी सीमित है यदि समानता न्याय और विकास के उद्देश्यों को प्राप्त कराता हैं। तो पुरूष व महिला दोनों को अपनी प्रवृितियाँ और मूल्य पुनः परिभाषित कराने होंगे।

विकास तथा परंम्परा का विस्थापन :– विकास की अवधारणा सामाजिक परिवर्तन से संबंधित हैं। समाज में परिवर्तन आतें है तो विकास ही होता विकास के मार्ग में अनेक बाधाये भी आती है इन बाधायों के सामना किया जाता है या तो बाधाओं को दूर कर दिया जाता है। या फिर इन बाधाये भी जाती है इन बाधाओ को सामना किया जाता है या तो इन बाधाओं को दूर कर दिया जाता है या फिर इन बाधाओं के प्रभाव को धीरे–धीरे कम किया जाता है परंपरा भी विकास का एक बाधक तत्व ही विकास तथा परंपरा का यह मेल मे अध्ययन का विषय बन जाता है विकास के दायरे इस पुस्तक में पर्याप्त लिखा जा चुका है आईये परंपरा पर एक दृष्टिपात करे परंपराये किसी भी समाज कि वे मौलिक धरोहर होती है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हंस्तांतरीत होती रहती है ये परंपराएँ सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों के रूप में होती है जो समाज के सदस्यों के व्यवहार को कठोरतापूर्वक नियंत्रण करती है उनका प्रभाव सामाजिक नियंत्रण के औपचारिक साधनों कानूनों में भी अधिक होता हैं परंपराओं में स्थायित्व पाया जाता है तथा ये परिवर्तन की घोर विरोधी होती है परंम्परायें संस्कृति के अभौतिक पक्ष की परिचायक होती है जो हमारे व्यवहार करने का तरीका बन जाती हैं। परंम्परा भारतीय संस्कृति एवं समाज के महत्वपूर्ण विशेषता रही हैं।

इसलिए परंम्परा की परिभाषा के संबंध में भारतीय समाजशास्त्री से अच्छा और कौन हो सकता है इनमें भी प्रो़ योगेन्द्र सिंह जिन्होंने परंम्परा के ऊपर अधिकारपूर्वक लिखा है।

योगेन्द्र सिंह के शब्दों परंम्परा किसी समाज कि तरह संचित धरोहर है जिसका सामाजिक संगठन के समस्त स्तरों पर प्रभाव रहता है जैसे सामाजिक मूल्य, सामाजिक संरचना, तथा वैयक्तिक संरचना ।

डी़.पी.मुखर्जी कुछ ऐसे महत्वपूर्ण समाजशास्त्र है जिन्होंने भारतीय समाज में परंपरा के प्रभावों का गहन अध्ययन किया है योगेन्द्र सिंह कि "modernization of India Tradition" इस क्षेत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दस्तावेंज माना जाता हैं।

विकास एवं परंम्परा :– विकास परिवर्तन का दूसरा नाम है जबकि परंम्परा परिवर्तन कि विरोधी है इसलिए यही पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि विकास एवं परंम्परा के द्वंन्द्व में क्या होता है विकास कि प्रक्रिया मे परंम्पराये अपना स्थान छोड़ देती है या फिर परंम्पराओं में पूर्व प्रभाव से बने रहने के पश्चात् भी विकास कि प्रक्रिया चलती रहती है इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है क्योंकि परंम्परागत समाजों में विकास हुआ है हो रहा है तथा इन समाजो में परंम्पराओं का प्रभाव अभी भी विद्यमान है दूसरी ओर कुछ परंम्पराये ऐसे होती है कि जिनका अतिक्रमण के बिना विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना संभव नहीं इसलिए कहा जा सकता है की परंम्पराये विकास कि प्रक्रिया में अपने स्वभाव में लचीलापन लगती है तथा परस्थिति के अनुसार स्वयं को ढ़ाल लेती है किंतु कुछ मामले ऐसे होते है जहाँ परंम्पराओं के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आता ऐसे सामाजो में यह तो विकास की प्रक्रियाँ अवरूद्ध हो जाती है यह फिर विकास कि गति अत्यंत मंद होती है कुछ सामाजो मे विद्यमान परंम्पराओं को ध्यान में रखकर ।

नितियों का निर्माण किया जाता है, ताकि विकास कि प्रक्रिया भी चलती रहे सामाजिक मूल्यों का अतिक्रमण भी न जो भी हो व्यवहारीक दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह निश्चित रूप से वहाँ जा सकता है कि विकास कि प्रक्रिया में परंम्पराओं में परिवर्तन आता है उनके प्रभावों में कमी आती है जो सामाजिक आर्थिक विकास के हेतु बनाई गई नितियाँ कही न कही प्राचीन सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों (परंम्पराओं) पर कुठाघात कराती है जब इन नितियों को क्रियांन्वित किया जाता है तो प्रारंभिक स्तर पर अनेक कठिनाई सामने आती है उनका विरोध होता है क्योंकि यह परंम्परा पहला आघात होती है यह विरोध चलता रहता है किंतु धीरे–धीरे जब समाज के सामनें इन नितियों कि सुखद परिणाम सामने आने लगता है तब लोगो का अपनी परंम्पराओं मोह कम होने लगता है क्योकि परंम्परा के तुलना में जीवन स्तर में हाने वाली वृद्धि लोगो को अधिक आकर्षित कराती है समाज में परंम्परा का स्थान विद्यमान रहता है किंतु उसमें परिवर्तन आ जाता है अर्थात् परंम्परा में कुछ प्राचीन रूढ़िवादी निकल जाते है और कुछ नवीन एवं तार्किक मूल्य से जुड़ जाते है यह कह सकते है विकास के दौर में परंम्परा समाप्त तो नहीं होती किंतु उसके प्रभाव एवं स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है।

ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

भारत विकास एवं परंम्परा :– विकास एवं परंम्परा का उल्लेख भारतवर्ष के उल्लेख के बिना अधुरा है, भारत एक मात्र वह देश है जहाँ परंम्पराये प्राचीन काल से ही अपने पूर्व प्रभाव के साथ विद्यमान रही है तथा यही वह देश है जहाँ विकास कि प्रक्रियाँ तीव्र गति से चल रही है भारत स्वयं को एक विकसित राष्ट्र कहलाने के लिए आतुर है भारत में विकास के कार्यो कि गति वैसे स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी मिली जब सन् 1957 में भारतीय योजना आयोग कि स्थापना की कई तथा पंचवर्षिय योजना प्रारंभ की गयी किंतु विकास कि कार्यो का प्रारंभ ब्रिटिश शासन के दौरान ही हो चुका था। इस अवधि में ब्रिटिश शासको में कई ऐसे कार्य किये जो भारतीय परंम्पराओं के विरोधी में भी किंतु विकासवादी में ऐसे ही कुछ कार्यो का उल्लेख प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री ए.आर.देसाई की पुस्तक (A.R.Desai;Social,Bagckground of Indian Nationalison,1948) मे मिलता है । यद्यपि देसाई का संदर्भ दूसरा है देसाई मार्क्सवादी सोच के समाजशास्त्री में उन्होंने अपनी इस कृति में यह स्थापित करने का प्रयास किया की परंम्पराये धर्म संबंधित नहीं है बल्कि यह तो सामाजिक एवं आर्थिक तत्वों सें जुड़ी हुई है तथा इनका उद्‌गम ग्रामीण एवं आर्थिक संस्थाओं में देखा जा सकता है देसाई ने उल्लेख किया है कि 18वीं शताब्दी के अंत में भारत वर्ष में कृषक को भूमि जोतने का अधिकार था तथा यह अधिकार परंम्परागत था। कृषक का भूमि परंतु स्वामित्व नहीं होता था। किंतु ब्रिटिश शासन ने भूमि का स्वामिस्व भूमि को जोतने वाली कृषक को सौप दिया । ऐसे कई उदाहरण देसाई की इस पुस्तक मे मिलते है इस उदाहरण से दो बाते सामने आती है प्रथम तो यह है कि कृषक को भूमि का स्वामित्व देना विकास के दिशा मे एक कदम था अर्थात् कृषक को कुछ लोगों के हाथ से निकालकर उसे उनके लोगो तक पहुंचाने ताकि सामाजिक सम्पति पर सभी का सामान अधिकार हो सके दूसरे ब्रिटिश शासन का यह कदम स्थापित भारतीय परंम्परा को तोड़ने वाला था।

इसके पश्चात् भारत में निरंतर विकास होता रहा आज भी हो रहा है परंम्पराये पहले और आज भी विद्यमान है केवल इनके स्वरूप में परिवर्तन आया है अर्थात् परंम्परा मे विकास की नीतियों एवं आवश्यकताओं कि अनुरूप स्वयं को ढ़ाल लिया है लोगों ने भी अपनी वर्तमान आवश्यकतांओ को समझा है इस कारण वे अधिक व्यवहार एवं अधिक तार्किक हो गया हैं। योगेन्द्र सिंह लिखते है अब हमारी परंम्परा तथा समाज के संरचना को धारणाएँ भी उनकी जड़े बदल गई हैं परंम्पराओं का जो आर्दश प्रारूप था उससे व्यवहारिक क्रियाएँ बिलकुल बदल गयी है।

योगेन्द्र सिंह वर्तमान भारत के चित्र को प्रस्तुत कराती है भारत के ग्रामीण समाज को देखे संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतीय ग्रामीण समाज कि परंम्परा रही है समय परिवर्तन के साथ वर्तमान में संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन हुआ है किंतु संयुक्त परिवार की भावना में अभी भी अधिक कमी नहीं आयी हैं। भारतीय ग्रामीणो में संयुक्त परिवार के सदस्य भले ही एकाकी परिवार के रूप में रहने लगे किंतु आवश्यकता पड़ने पर वे एक दूसरे की भरपूर सहायता करते हैं । भारत में इस्लामीक समाज को भी देख इस्लामी समाज में मदरसो के माध्यम से

शिक्षा देने की परंम्परा रही हैं। भारत में धीरे–धीरे शिक्षा का विकास हुआ और शिक्षा के आधुनिक तरीको का विस्तार हुआ इस्लामीक समाज में अभी भी मदरसो के माध्यम से शिक्षा प्रदान कि जाती है यद्यपि इस्लामीक समाजो में शिक्षा के आधुनिक केन्द्रो का प्रचलन बढ़ा है तथा मदरसो के संख्या में भारी कमी आयी है किंतु मदरसो के आधुनिकीकरण कर दिया गया है या किया जा रहा है मदरसो के रूप में परंम्परा भी विद्यमान है किंतु विकास कि दौड़ में मदरसो के स्वरूप में परिवर्तन आया हैं।

वही दूसरी ओर भारत में कुछ उदाहरण ऐसे भी है जो बताते है कि कुछ मामलो में परंम्परा का स्वरूप परिवर्तित नहीं हुआ बल्कि अस्तित्व ही समाप्त हो गया हैं। यह स्थिति तो सकारात्मक है किंतु चिंता तब होती है जब हम देखते है कि कुछ संदर्भो में परंम्परा मे कोई परिवर्तन नहीं आया हैं जिससे विकास कि गति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है प्रथम बात का उदाहरण जजमानि का व्यवस्था है जजमानि व्यवस्था सामाजिक आर्थिक विकास के एक बड़ी बाधा क्योंकि यह न केवल बिगारी प्रथा पर आधारीत भी बल्कि सामाजिक असमानता को प्रोत्साहित करने वाली थी विकास के दौर में जजमानि व्यवस्था के दुषप्रभाव को देखते हुए इसके विरोध में कार्य किया गया आज जजमानि लगभग समाप्त हो चूकि है इससे ग्रामीण समाज का बड़ा विकास हुआ है।

वही तिसरी बात का उदाहरण जाति व्यवस्था है भारत में जाति व्यवस्था के बंधनों में सामाजिक आर्थिक विकास को बहुत चोट पहुंचाई है यद्यपि वर्तमान में जाति व्यवस्था के बंधनो में शिथिलता आयी है किंतु नगरीय औद्योगिक समाजों का एक छोटे से हिस्से में भारतीय ग्रामीण समाज एवं नागरीकिय समाजो को विकास का एक बड़ा हिस्सा अभी भी जाति व्यवस्था के बंधनों से स्वयं को मुक्त नहीं कर सका है कहे जाए तो जाति व्यवस्था भारत मे का विकास कि एक बड़ी बाधाए किंतु कुलमिलाकर देखा जाए तो जाति व्यवस्था के बंधंनो मे वही शिथिलता प्रारंभ तो हो चुका और यह भी निश्चित है कि आने वाले समय में इसके प्रभाव भी भारी कमी आयेगी किंतु अधिकांश मामलों में विकास ने यह तो परंम्परा के स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है यह समाप्त भी कर दिया है।

निष्कर्ष :– परंम्परा का प्रभाव कम हो रहा है तथा परंम्परा के स्वरूप में परिवर्तन आया है परंम्परा का निर्माण स्वयं मनुष्य करता है तथा अपनी आवश्यकताओं कि पूर्ति हेतु मनुष्य ने अपनी परंम्पराओं को परिवर्तित कर लिया है, भारतीय समाज भी इससे अधुता नहीं रहा है विकास के दौड़ में भारतीय परंम्पराओं का आधुनिकीकरण हो रहा है।

संदर्भ :– 1. डी.जी.आर.मदन के परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र विवेक प्रकाशन 2005

2. डॉ. अमित अग्रवाल परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र विवेक प्रकाशन 2007